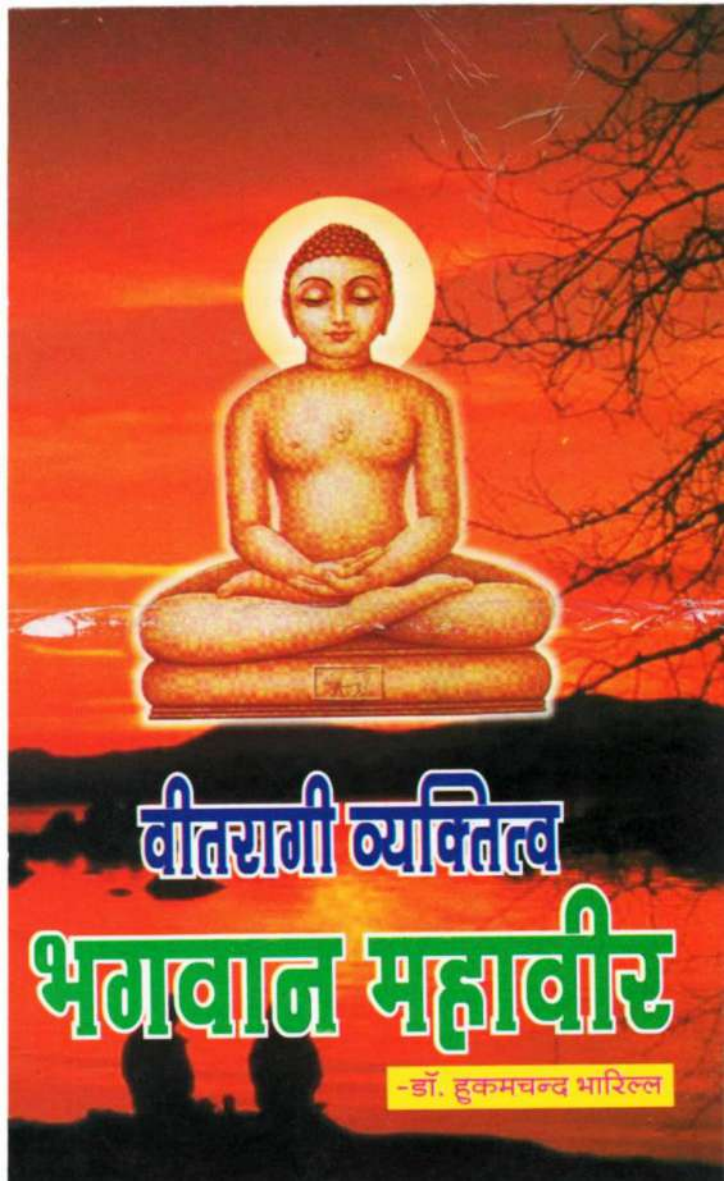
वीतरागी व्यक्तित्व
भगवान महावीर
-डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

डॉ. भारिल्ल द्वारा प्रतिपादित एकता के पाँच सूत्र

1. भूतकाल को भूल जाओ।
2. भविष्य के लिये कोई शर्त मत रखो।
3. वर्तमान में जो जहाँ है, वहीं रहकर अपना कार्य करें।
4. जिन पाँच प्रतिशत बातों के संबंध में असहमति है, उन्हें अचर्चित रहने दें और आलोचना प्रत्यालोचना से दूर रहें।
5. जिन बातों में पूर्ण सहमति है, उनका मिलजुलकर या अलग-अलग रहकर, जैसे भी सम्भव हो, डटकर प्रचार-प्रसार करें।

वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त जितने गूढ़,गंभीर व ग्राह्य हैं; उनका वर्तमान जीवन (भव) उतना ही सादा, सरल एवं सपाट है, उसमें विविधताओं को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। उनका वर्तमान जीवन घटना-बहुल नहीं है। घटनाओं में उनके व्यक्तित्व को खोजना भी व्यर्थ है।

घटना समग्र-जीवन के एक खण्ड पर प्रकाश डालती है। घटनाओं में जीवन को देखना उसे खण्डों में बाँटना है। भगवान महावीर का व्यक्तित्व अखण्ड है, अविभाज्य है, उसका विभाजन संभव नहीं है। उनके व्यक्तित्व को घटनाओं में बाँटना, उनके व्यक्तित्व को खण्डित करना है।

अखण्डित दर्पण में बिम्ब अखण्ड और विशाल प्रतिबिम्बित होते हैं, किन्तु कांच के टूट जाने पर प्रतिबिम्ब भी अनेक और क्षुद्र हो जाते हैं। उनकी एकता और विशालता खण्डित हो जाती है। वे अपना वास्तविक अर्थ खो देते हैं।

भगवान महावीर के आकाशवत् विशाल और सागर से गंभीर व्यक्तित्व को बालक वर्द्धमान की बाल-सुलभ क्रीड़ाओं से जोड़ने पर उनकी गरिमा बढ़ती नहीं, वरन् खण्डित होती है।

'सन्मति' शब्द का कितना भी महान अर्थ क्यों न हो, पर केवलज्ञान की विराटता को अपने में नहीं समेट सकता। केवलज्ञानी के लिए सन्मति नाम छोटा ही पड़ेगा, ओछा ही रहेगा। वह केवलज्ञानी की महानता व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सकता। जिनकी वाणी एवं दर्शन ने अनेकों की शंकाएँ समाप्त की हों, अनेकों को सन्मार्ग दिखाया हो, सत्पथ में लगाया हो; उनकी महानता को किसी एक की शंका को समाप्त करनेवाली घटना कुछ विशेष व्यक्त नहीं कर सकती।

बढ़ते तो अपूर्ण हैं, जो पूर्णता को प्राप्त हो चुका हो – उसे 'वर्द्धमान' कहना कहाँतक सार्थक हो सकता है? इसीप्रकार महावीर की वीरता को सांप और हाथी वाली घटनाओं से नापना कहाँ तक संगत है, यह एक विचारने की बात है।

यद्यपि महावीर के जीवनसंबंधी उक्त घटनाएँ शास्त्रों में वर्णित हैं; तथापि वे बालक वर्द्धमान को वृद्धिंगत बताती हैं, भगवान महावीर को नहीं। सांप से न डरना बालक वर्द्धमान के लिए गौरव की बात हो सकती है, हाथी को वश में करना राजकुमार वर्द्धमान के लिए प्रशंसनीय कार्य हो सकता है, भगवान महावीर के लिए नहीं। आचार्यों ने उन्हें यथास्थान ही इंगित किया है। वन-विहारी पूर्ण अभय को प्राप्त महावीर एवं पूर्ण वीतरागी सर्वस्वातंत्र्य के उद्घोषक तीर्थंकर भगवान

महावीर के लिए साँप से न डरना, हाथी को काबू में रखना क्या महत्त्व रखते हैं ?

जिसप्रकार बालक के जन्म के समय इष्ट मित्र व संबंधीजन वस्त्रादि लाते हैं और कभी-कभी तो सैंकड़ों जोड़ी वस्त्र बालक के लिए इकट्ठे हो जाते हैं। लाते तो सभी बालक के अनुरूप ही हैं, पर वे सब कपड़े तो बालक को पहिनाए नहीं जा सकते। बालक दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है, वस्त्र तो बढ़ते नहीं। जब बालक २०-२५ वर्ष का हो जावे, तब कोई माँ उसे वही वस्त्र पहिनाने की सोचे जो जन्म के समय आये थे और जिनका प्रयोग नहीं हो पाया था तो क्या वे वस्त्र २०-२५ वर्षीय युवक को आ पायेंगे ? नहीं आने पर वस्त्र लानेवालों को भला-बुरा कहे तो यह उसकी मूर्खता मानी जायेगी, वस्त्र लानेवालों की नहीं।

उसीप्रकार महावीर के वर्द्धमान, वीर, अतिवीर आदि नाम उन्हें उस समय दिये गये थे; जब वे नित्य बढ़ रहे थे, सन्मति (मति-ज्ञानी) थे, बालक थे, राजकुमार थे। उन्हीं घटनाओं और नामों को लेकर हम तीर्थंकर भगवान महावीर को समझना चाहें तो यह हमारी बुद्धि की ही कमी होगी, न कि लिखनेवाले आचार्यों की। वे नाम, वे वीरता की चर्चाएँ यथासमय सार्थक थीं।

तीर्थंकर महावीर के विराट व्यक्तित्व को समझने के लिए हमें उन्हें विरागी-वीतरागी दृष्टिकोण से देखना होगा। वे धर्मक्षेत्र के वीर, अतिवीर और महावीर थे; युद्धक्षेत्र के नहीं। युद्धक्षेत्र और धर्मक्षेत्र में बहुत बड़ा अन्तर है। युद्धक्षेत्र में शत्रु का नाश किया जाता है और धर्मक्षेत्र में शत्रुता का। युद्धक्षेत्र में पर को जीता जाता है और धर्मक्षेत्र में स्वयं को। युद्धक्षेत्र में पर को मारा जाता है और धर्मक्षेत्र में अपने विकारों को।

महावीर की वीरता में दौड़-धूप नहीं, उछल-कूद नहीं, मारकाट नहीं, हाहाकार नहीं; अनन्त शांति है। उनके व्यक्तित्व में वैभव की नहीं, वीतराग-विज्ञान की विराटता है।

जब-जब यह कहा जाता है कि महावीर का जीवन घटना-प्रधान नहीं है, तब उसका आशय यही होता है कि दुर्घटना-प्रधान नहीं है; क्योंकि तीर्थंकर के जीवन में आवश्यक शुभ घटनायें तो पंचकल्याणक ही हैं। वे तो महावीर के जीवन में घटी ही थीं।

दुर्घटनाएँ घटना कोई अच्छी बात तो है नहीं कि जिनके घटे बिना जीवन, जीवन ही न रहे और एक बात यह भी तो है कि दुर्घटनाएँ या तो पाप के उदय से घटती हैं या या पापभाव के कारण।

जिसके जीवन में न पाप का उदय हो और न पापभाव

हो, तो फिर दुर्घटनाएँ कैसे घटेंगी, क्यों घटेंगी ? अनिष्ट संयोग पाप के उदय के बिना संभव नहीं हैं तथा वैभव और भोगों में उलझाव पापभाव के बिना असम्भव है।

भोग के भावरूप पापभाव के सद्भाव में घटनेवाली घटनाओं में शादी एक ऐसी दुर्घटना है, जिसके घट जाने पर दुर्घटनाओं का एक कभी न समाप्त होनेवाला सिलसिला आरम्भ हो जाता है। सौभाग्य से महावीर के जीवन में यह दुर्घटना न घट सकी। एक कारण यह भी है कि उनका जीवन घटना-प्रधान नहीं है।

लोग कहते हैं कि बचपन में किसके साथ क्या नहीं घटता, किसके घुटने नहीं फूटते, किसके दांत नहीं टूटते ? महावीर के साथ भी निश्चितरूप से यह सब कुछ घटा ही होगा, भले ही आचार्यों ने न लिखा हो।

पर भाई साहब ! दुर्घटनाएँ बचपन से नहीं, बचपने से घटती हैं; महावीर के बचपन तो आया था, पर बचपना उनमें नहीं था; अत: घुटने फूटने और दांत टूटने का सवाल ही नहीं उठता। वे तो बचपन से ही सरल, शांत एवं चिंतनशील व्यक्तित्व के धनी थे। उपद्रव करना उनके स्वभाव में ही न था और बिना उपद्रव के दांत टूटना, घुटने फूटना संभव नहीं।

कुछ लोगों का कहना यह भी है कि न सही बचपन में,

पर जवानी तो घटनाओं का ही काल है। जवानी में तो कुछ न कुछ घटा ही होगा। पर बन्धुवर! जवानी में दुर्घटनाएँ उनके साथ घटती हैं, जिन पर जवानी चढ़ती है। महावीर तो जवानी पर चढ़े थे, जवानी उन पर नहीं। जवानी चढ़ने का अर्थ है – यौवन संबंधी विकृतियाँ उत्पन्न होना और जवानी पर चढ़ने का तात्पर्य शारीरिक सौष्ठव का पूर्णता को प्राप्त होना है।

राग संबंधी विकृति भोगों में प्रगट होती है और द्वेष संबंधी विद्रोह में। न वे रागी थे, न द्वेषी; अतः न वे भोगी थे और न ही द्रोही।

महावीर ने विद्रोह नहीं, अद्रोह किया था। विद्रोह, द्रोह का ही एक भेद है। द्रोह स्वयं एक विकार है। उन्होंने न स्वयं से द्रोह किया, न दूसरों से। उन्होनें द्रोह का अभाव किया था; अतः उन्हें अद्रोही ही कहा जा सकता है, विद्रोही नहीं। द्रोह, द्रोह को उत्पन्न करता है, द्रोह से अद्रोह का जन्म नहीं हो सकता। उन्होंने किसी के प्रति विद्रोह करके घर नहीं छोड़ा था। उनका त्याग विद्रोहमूलक न था। उनके त्याग और संयम के कारणों को दूसरों में खोजना उनके साथ अन्याय है। वे 'न काहू से दोस्ती न काहू से बैर' के रास्ते पर चले थे।

वीतरागी-पथ पर चलनेवाले विरागी महावीर को समझने के लिए उनके अन्तर में झांकना होगा। उनका वैराग्य देश-

काल की परिस्थितियों से उत्पन्न नहीं हुआ था, उसके कारण उनके अन्तरंग में विद्यमान थे। उनका वैराग्य परोपजीवी नहीं था। जो वैराग्य किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होता है, वह क्षण-जीवी होता है। परिस्थितियों के बदलते ही उसका समाप्त हो जाना संभव है।

यदि देश-काल की परिस्थितियाँ महावीर के अनुकूल होतीं तो क्या वे वैराग्य धारण न करते, गृहस्थी बसाते, राज्य करते ? नहीं, कदापि नहीं। दूसरे परिस्थितियाँ उनके प्रतिकूल थीं हीं कब ? तीर्थंकर महान पुण्यशाली महापुरुष होते हैं, अतः परिस्थितियों का उनके प्रतिकूल न होना असंभव नहीं है।

वैराग्य या विराग राग के अभाव का नाम है, विद्रोह का नाम नहीं। वे वैरागी राग के अभाव के कारण बने थे, न कि विद्रोह के कारण। महावीर वैरागी राजकुमार थे, न कि विद्रोही। महावीर जैसे अद्रोही महामानव में विद्रोह खोज लेना अभूतपूर्व खोजबुद्धि का परिणाम है, बालू में तेल निकालने जैसा यत्न है, बन्ध्या के पुत्र के विवाह-वर्णनवत् कल्पना की उड़ानें हैं, जिनका न ओर है न छोर।

घर में जो कुछ घटता है, अपनी ओर से घटता है; पर वन में तो बाहर से बहुत कुछ घट जाने के प्रसंग रहते हैं; क्योंकि घर में बाहर के आक्रमण से सुरक्षा का प्रबंध प्रायः

रहता है। यदि कोई उत्पात हो तो अन्तर के विकारों के कारण ही होता देखा जाता है, पर वन में बाहर से सुरक्षा-प्रबंध का अभाव होने से घटनाएँ घटने की सम्भावना अधिक रहती हैं। माना कि महावीर का अन्तर विशुद्ध था; अत: घर में कुछ न घटा, पर वन में तो घटा ही होगा ?

हाँ ! हाँ ! अवश्य घटा था, पर लोक जैसे घटने को घटना मानता है; वैसा कुछ नहीं घटा था। राग-द्वेष घट गये थे, तब तो वे वन को गये ही थे। क्या राग-द्वेष का घटना कोई घटना नहीं है ? पर बहिर्मुखी दृष्टिवाले को राग-द्वेष घटनें में कुछ घटना सा नहीं लगता। यदि तिजोरी में से लाख दो लाख रुपया घट जायें, शरीर में से कुछ खून घट जाये; आँख, नाक, कान घट जाय, कट जाय तो इसे बहुत बड़ी घटना लगती है, पर राग-द्वेष घट जाय तो इसे घटना ही नहीं लगता।

वन में ही तो महावीर रागी से वीतरागी बने थे, अल्पज्ञानी से पूर्णज्ञानी बने थे। सर्वज्ञता और तीर्थंकरत्व वन में ही तो पाया था। क्या ये घटनाएँ छोटी हैं ? क्या कम हैं ? इनसे बड़ी भी कोई घटना हो सकती है ? मानव से भगवान बन जाना कोई छोटी घटना है ? पर जगत् को तो इसमें कोई घटना सी ही नहीं लगती। तोड़-फोड़ की रुचिवाले जगत् को तोड़-फोड़ में ही घटना नजर आती है, अन्तर में शांति से चाहे जो

कुछ घट जाय, उसे वह घटना सा ही नहीं लगता। अन्तर में जो कुछ प्रतिपल घट रहा है, वह तो उसे दिखाई नहीं देता, बाहर में कुछ हलचल हो, तभी कुछ घटा सा लगता है।

जबतक देवांगनाएँ लुभाने को न आवें और उनके लुभाने पर भी कोई महापुरुष न डिगे; तबतक हमें उसकी विरागता में शंका बनी रहती है। जब तक कोई पत्थर न बरसाए, उपद्रव न करे और उपद्रव में भी कोई महात्मा शांत न बना रहे, तबतक हमें उसकी वीत-द्वेषता समझ में नहीं आती।

यदि प्रबल पुण्योदय से किसी महात्मा के इसप्रकार के प्रतिकूल संयोग न मिलें तो क्या वह वीतरागी और वीतद्वेषी नहीं बन सकता ? क्या वीतरागी और वीतद्वेषी बनने के लिए देवांगनाओं का डिगाना और राक्षसों का उपद्रव करना आवश्यक है ? क्या वीतरागता इन घटनाओं के बिना प्राप्त और संप्रेषित नहीं की जा सकती ? क्या मुझे क्षमाशील होने के लिए सामनेवालों का मुझे सताना, गाली देना जरूरी है ? क्या उनके सताए बिना मैं शांत नहीं हो सकता ?

ये कुछ प्रश्न ऐसे प्रश्न हैं, जो बाह्य घटनाओं की कमी के कारण महावीर के चरित्र में रूखापन माननेवालों और चिन्तित होनेवालों के लिए विचारणीय हैं।

महावीर के साथ वन में क्या घटा था ? वन में जाने स

पूर्व हो महावीर बहुत कुछ तो वीतरागी हो हो गय थे, रहा-सहा राग भी तोड़, पूर्ण वीतरागी बनने, नग्न दिगम्बर हो, वन को चल पड़े थे। उनके लिए वन और नगर में कोई भेद नहीं रहा था। सब कुछ छूट गया था, वे सब से टूट गये थे। उन्होंने सब कुछ छोड़ा था; कुछ ओढ़ा न था। वे साधु बने नहीं, हो गये थे।

साधु बनने में भेष पलटना पड़ता है, साधु होने में स्वयं ही पलट जाता है। स्वयं के बदल जाने पर वेष भी सहज ही बदल जाता है। वेष बदल क्या जाता है, सहज वेष हो जाता है, यथाजात वेष हो जाता है; जैसा पैदा हुआ था वही रह जाता है, बाकी सब कुछ छूट जाता है।

वस्तुतः साधु की कोई ड्रेस नहीं है, सब ड्रेसों का त्याग ही साधु का वेष है। ड्रेस बदलने से साधुता नहीं आती, साधुता आने पर ड्रेस छूट जाती है। यथाजातरूप (नग्न) ही सहज वेष है। और सब वेष तो श्रमसाध्य हैं, धारण करनेरूप हैं। वे साधु के वेष नहीं हो सकते; क्योंकि उनमें गांठ है, उनमें गांठ बांधना अनिवार्य है। साधुता बंधन नहीं है, उसमें सर्वबन्धनों की अस्वीकृति है।

साधु का कोई वेष नहीं होता, नग्नता कोई वेष नहीं। वेष साज-संभार है, साधु को सजने-संवरने की फुर्सत ही कहाँ ह? उसका सजने का भाव ही चला गया है। सजने में 'मैं

दूसरों को कैसा लगता हूँ ?' का भाव प्रमुख रहता है। साधु को दूसरों से प्रयोजन ही नहीं है, वह जैसा है, वैसा ही है। वह अपने में ऐसा मग्न है कि दूसरों के बारे में सोचने का काम ही नहीं। दूसरे उसके बारे में क्या सोचते हैं, इसकी उसे परवाह ही नहीं। सर्ववेष श्रृंगार के सूचक हैं, साधु को श्रृंगार की आवश्यकता ही नहीं। अत: उसका कोई वेष नहीं होता।

दिगम्बर कोई वेष नहीं है, सम्प्रदाय नहीं है; वस्तु का स्वरूप है। पर हम वेषों को देखने के आदी हो गये हैं कि वेष के बिना सोच ही नहीं सकते। हमारी भाषा वेषों की भाषा हो गई है। अत: हमारे लिए दिगम्बर भी वेष हो गया है। हो क्या गया – कहा जाने लगा है।

सब वेषों में कुछ उतारना पड़ता है और कुछ पहिनना होता है, पर इसमें छोड़ना ही छोड़ना है, ओढ़ना कुछ भी नहीं। छोड़ना भी क्या, उघड़ना है, छूटना है। अन्दर से सब कुछ छूट गया है, देह भी छूट गयी है, पर बाहर से अभी वस्त्र ही छूटे हैं, देह छूटने में अभी कुछ समय लग सकता है, पर वह भी छूटनी है; क्योंकि उसके प्रति भी जो राग था, वह टूट चुका है। देह रह गयी है तो रह गयी है, जब छूटेगी तब छूट जायगी; पर परवाह उसकी भी छूट गयी है।

मुनिराज वर्द्धमान नगर छोड़ वन में चले गये। पर वे वन

में भी गए कहाँ हैं ? वे तो अपने में चले गये हैं, उनका वन में भी अपनत्व कहाँ है ? उन्हें वनवासी कहना भी उपचार है, वे वन में भी कहाँ रहे ? वे तो आत्मवासी हैं। न उन्हें नगर से लगाव है, न वन से; वे तो दोनों से अलग हो गये हैं, उनका तो पर से अलगाव ही अलगाव है।

रागी वन में जायगा तो कुटिया बनायगा, वहाँ भी घर बसायगा, ग्राम और नगर बसायगा; भले ही उसका नाम कुछ भी हो, है तो घर ही। रागी वन में भी मंदिर के नाम पर महल बसायगा, महलों में भी उपवन बसायगा। वह वन में रहकर भी महलों को छोड़ेगा नहीं, महल में रहकर भी वन को छोड़ेगा नहीं।

उनका चित्त जगत् के प्रति सजग न होकर आत्मनिष्ठ हो गया था। देश-काल की परिस्थितयों के कारण उन्होंने अपनी वासनाओं को दमन नहीं किया था। उन्हें दमन की आवश्यकता भी न थी; क्योंकि वासनाएँ स्वयं अस्त हो चुकी थीं।

उन्होंने सर्वथा मौन धारण कर लिया था, उनको बोलने का भाव भी न रहा था। वाणी पर से जोड़ती है, उन्हें पर से जुड़ना ही न था। वाणी विचारों की वाहक है, वह विचारों का आदान-प्रदान करने में निमित्त है, वह समझने-समझाने के काम आती है; उन्हें किसी से कुछ समझना ही न था। जो समझने योग्य था उसे वे अच्छी तरह समझ चुके थे, अब तो उसमें मग्न थे।

उन्हें किसी को समझाने का राग भी न रहा था; अत: वाणी का क्या प्रयोजन ? वाणी उन्हें प्राप्त थी, पर वाणी की उन्हें आवश्यकता ही न थी। जो उन्हें चाहिए ही नहीं, वह रहे तो रहे और न रहे तो न रहे; उससे उन्हें क्या ? रहे तो ठीक, न रहे तो ठीक। वे तो निरन्तर आत्मचिन्तन में ही लगे रहते थे।

नहाना-धोना सब कुछ छूट गया था। वे स्नान और दंत-धोवन के विकल्प से भी परे थे। शत्रु और मित्र में समभाव रखनेवाले मुनिराज वर्द्धमान गिरि कन्दराओं में वास करते थे।

वस्तुत: न उनका कोई शत्रु ही रहा था और न कोई मित्र। मित्र और शत्रु राग-द्वेष की उपज हैं। जब उनके राग-द्वेष ही समाप्तप्राय: थे, तब शत्रु-मित्रों के रहने का कोई प्रश्न ही नहीं रह गया था।

मित्र रागियों के होते हैं और शत्रु द्वेषियों के – वीतरागियों का कौन मित्र और कौन शत्रु ? कोई उनसे शत्रुता करो तो करो, मित्रता करो तो करो; उन पर उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। शत्रु-मित्र के प्रति समभाव का अर्थ ही शत्रु-मित्र का अभाव है।

उनके लिए उनका न कोई शत्रु था और न कोई मित्र। अन्य लोग उन्हें अपना शत्रु मानो तो मानो, अपना मित्र मानो तो मानो; अब वे किसी के कुछ भी न रह गये थे। किसी का कुछ रहने में कुछ लगाव होता है, उन्हें जगत् से कोई लगाव

ही न रहा था।

एक अघट घटना महावीर के जीवन में अवश्य घटी थी। आज से २५२६ वर्ष पहले दीपावली के दिन जब वे घट (देह) से अलग हो गये थे, अघट हो गये थे, घट-घट के वासी होकर भी घटवासी न रहे थे, गृहवासी और वनवासी तो बहुत दूर की बात है, अन्तिम घट (देह) को भी त्याग मुक्त हो गये थे।

इससे अभूतपूर्व घटना किसी के जीवन में कोई अन्य नहीं हो सकती, पर यह जगत इसको घटना माने तब न ?

इसप्रकार जगत् से सर्वथा अलिप्त, सम्पूर्णत: आत्मनिष्ठ महावीर के जीवन को समझने के लिए उनके अन्तर में झांकना होगा कि उनके अन्तर में क्या कुछ घटा ? उन्हें बाहरी घटनाओं से नापना, बाहरी घटनाओं में बांधना सम्भव नहीं है।

यदि हमने उनके ऊपर अघट-घटनाओं को थोपने की कोशिश की तो वास्तविक महावीर तिरोहित हो जावेंगे, वे हमारी पकड़ से बाहर हो जावेंगे और जो महावीर हमारे हाथ लगेंगे, वे वास्तविक महावीर न होंगे, तेरी-मेरी कल्पना के महावीर होंगे।

यदि हमें वास्तविक महावीर चाहिए तो उन्हें कल्पनाओं के घेरों में न घेरिये, उन्हें समझने का यत्न कीजिए, अपनी विकृत कल्पनाओं को उन पर थोपने की अनधिकार चेष्टा मत कीजिए।

महावीर वाणी

- प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है। कोई किसी के आधीन नहीं है।
- सब आत्माएँ समान हैं। कोई छोटा-बड़ा नहीं है।
- प्रत्येक आत्मा अनन्तज्ञान और सुखमय है। सुख कहीं बाहर से नहीं आना है।
- आत्मा ही नहीं, प्रत्येक पदार्थ स्वयं परिणमनशील है। उसके परिणमन में पर-पदार्थ का कोई हस्तक्षेप नहीं है।
- सब जीव अपनी भूल से ही दुःखी हैं और स्वयं अपनी भूल सुधार कर सुखी हो सकते हैं।
- अपने को नहीं पहचानना ही सबसे बड़ी भूल है तथा अपना सही स्वरूप समझना ही अपनी भूल सुधारना है।
- भगवान कोई अलग नहीं होते। यदि सही दिशा में पुरुषार्थ करे तो प्रत्येक जीव भगवान बन सकता है।
- स्वयं को जानो, स्वयं को पहचानो और स्वयं में समा जावो; भगवान बन जावोगे।
- भगवान जगत का कर्त्ता-हर्त्ता नहीं। वह तो समस्त जगत का मात्र ज्ञाता-दृष्टा है।
- जो समस्त जगत को जानकर उससे पूर्ण अलिप्त वीतराग रह सके अथवा पूर्णरूप से अंप्रभावित रहकर जान सके, वही भगवान है।

महावीर वन्दना

जो मोह माया मान मत्सर मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।।
जो तरम-तारण भव-निवारण भव जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं।।
जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विशद विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में।।
युगपद विशद सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में।।
जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार हैं।
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावें पार हैं।।
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वंदना शत बार है।।
जिनके विमल उपदेश में, सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है।।
जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्त्ता न धर्त्ता कोई हैं, अणु-अणु स्वयं में लीन हैं।।
आतम बनें परमात्मा हो शान्ति सारे देश में।
हैं देशना सर्वोदयी महावीर के सन्देश में।।

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का नाम आज जैन समाज के उच्चकोटि के विद्वानों में अग्रणीय है।

ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी वि.स. 1992 तदनुसार शनिवार, दिनांक 25 मई, 1935 को ललितपुर (उ.प्र.) जिले के बरौदास्वामी ग्राम के एक धार्मिक जैन परिवार में जन्में डॉ. भारिल्ल शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न तथा एम.ए.पी-एच. डी. हैं। समाज द्वारा विद्यावाचस्पति वाणीविभूषण, जैनरत्न आदि अनेक उपाधियों से समय-समय पर आपको विभूषित किया गया है।

सरल, सुबोध, तर्कसंगत एवं आकर्षक शैली के प्रवचनकार डॉ. भारिल्ल आज सर्वाधिक लोकप्रिय आध्यात्मिक प्रवक्ता हैं। उन्हें सुनने देश-विदेश में हजारों श्रोता निरन्तर उत्सुक रहते हैं। आध्यात्मिक जगत में ऐसा कोई घर न होगा, जहाँ प्रतिदिन आपके प्रवचनों के कैसिट न सुने जाते हों तथा आपका साहित्य उपलब्ध न हो। धर्म प्रचारार्थ आप अनेक बार विदेश यात्रायें भी कर चुके हैं।

जैन-जगत में सर्वाधिक पढ़े जाने वाले डॉ. भारिल्ल ने अब तक छोटी-बड़ी 49 पुस्तकें लिखी हैं और अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया है, जिनकी सूची अन्दर प्रकाशित की गई है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अब तक आठ-भाषाओं में प्रकाशित आपकी कृतियाँ 36 लाख से भी अधिक की संख्या में जन-जन तक पहुँच चुकी हैं।

सर्वाधिक बिक्री वाले जैन आध्यात्मिक मासिक वीतराग-विज्ञान हिन्दी तथा मराठी के आप सम्पादक हैं। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की समस्त गतिविधियों के संचालन में आपका महत्वपूर्ण योगदान है।